

योगानुभूतियाँ

□ श्री चन्द्रशेखर राजाद

लगभग दो वर्ष पूर्व की बात है। वसंत का ही मौसम था। केन्द्र पर नियमित अभ्यास करने आने वालों में भाई देवेन्द्र भी थे। इन्होंने आग्रह किया कि पू. म. सा. उमरावकुंवरजी शिष्या-मण्डली के साथ यहाँ विराजमान हैं। वे आपसे योग-संबंधी कुछ चर्चा करना चाहते हैं। पू. म. सा. ने मुझसे अपनी शिष्यामण्डली की समस्त सदस्यों के लिए कुछ आसनादि का अभ्यास सिखाने की अपेक्षा व्यक्त की जो मैंने तत्काल सहर्ष स्वीकार की। यह क्रम प्रतिदिन कुछ दिनों तक चला। इसी दौरान योगविषयक चर्चाएँ भी चला करती थीं। चर्चाओं के बीच ही पूज्य म. सा. ने योगविषयक अपने अनुभव सुनाये तथा ध्यान का भी महत्त्व समझाया। इसी बीच बाहर से पधारे कुछ उन साधकों से भी भेंट का सुअवसर प्राप्त हुआ जिन्होंने ध्यान के अभ्यास में अनेकानेक विस्मयकारी अनुभव प्राप्त किए थे। मुख्यतः उन साधिकाश्री का स्पष्ट स्मरण आता है जिनके विषय में बताते हुए पू. म. सा. ने कहा था कि ध्यानस्थ अवस्था में एक बार इनका शरीर स्वतः ही भूमि से ऊपर उठ गया था। उनके अभ्यास में समय की कोई बाधा नहीं थी। कुछ अभ्यासियों का तो यहाँ तक अनुभव उनके पत्रों से ज्ञात हुआ कि उन्हें दिन में कभी भी और कई-कई घंटों का ध्यान स्वतः ही निष्प्रयत्न ही लगने लगा है। इतना प्रभावित किया इन सब बातों ने कि मन में उत्कट आकांक्षा जाग्रत हो गई इस ध्यान-विज्ञान को सीखने की। मैंने तब पू. म. सा. से आग्रहपूर्वक इस ज्ञान निर्भर से प्लावित करने का निवेदन किया तो उन्होंने कृपापूर्वक बड़े ही सहजभाव से स्वीकार कर लिया। इस बात की चर्चा अब हमने केन्द्र के सदस्यों के बीच की तो उनमें से कुछ सदस्य और भी हमारे साथ आने को तत्पर हो गये।

यह क्रम साप्ताहिक ध्यानशाला के रूप में प्रारंभ हुआ और हम प्रति रविवार प्रातः ध्यान के लिए एकत्र होने लगे। इस बीच यहाँ भी कुछ साधकों को बड़े अलौकिक अनुभव हुये जो उन्होंने पृथक्-पृथक् लिपिबद्ध भी किये हैं। प्रस्तुत लेख में इस ध्यानपद्धति को ज्यों का त्यों आपके सम्मुख प्रस्तुत किया है पू. म. सा. के आशीर्वाद एवं आपकी सच्ची लगन व सत्प्रयत्नों से, आप भी इससे लाभान्वित हो सकते हैं। यह पद्धति हमारी साथी सदस्या कु. विजया खड़ीकर द्वारा लिपिबद्ध की गई है। उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है—

जैन साध्वी प. पूजनीय उमरावकुंवरजी 'अर्चनाजी' म. सा. के प्रवचन का सारांश—

प्रिय पाठको !

लगभग २ वर्ष पूर्व मुझे म. सा. के सान्निध्य का लाभ इन्दौर में प्राप्त हुआ। योग विद्यालय के हम ८-१० विद्यार्थी प्रति रविवार प्रातः म. सा. के पास ध्यान का अभ्यास करने हेतु पहुँचते थे। उनके मार्गदर्शन में कई बार ध्यान का अभ्यास भी हम लोगों ने किया था। ध्यान करने के पूर्व की भूमिका पर प्रकाश डालने हेतु आदरणीय म. सा. ने दिनांक २२-७-८४, २९-७-८४ एवं ५-८-८४ को जो हमें ज्ञानवर्धक प्रवचन दिया उसमें से घर आते-आते जितना मेरे लघु मस्तिष्क में बचा रहा, उसे उन्हीं दिनों लिख लिया। यह भी उनकी महिमा है जिसने तब प्रेरणा दी तो ये बातें स्थायी रूप से सुरक्षित रह पायीं। उन्हीं प्रवचनों का सारांश मैं उन लोगों के लाभार्थ यहाँ लिखने जा रही हूँ जो अभी प्रत्यक्षतः म. सा. के सम्पर्क में नहीं आ पाये हैं। हो सकता है, उन्हें भविष्य में ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो और वे प. पू. म. सा. के दर्शन कर सकें। तब तक उन्हीं (म. सा.) के द्वारा प्रवाहित ज्ञानगंगा की कुछ बूँदें आपके लिए समर्पित हैं—

दिनांक २२-७-८४, रविवार—

मनुष्य को मन प्राप्त है, इसलिए वह मनन कर सकता है। बुद्धि है इसलिए सोच सकता है कि उसके जीवन का लक्ष्य क्या है? उसे कहाँ तक जाना है? क्या प्राप्त करना है? मनुष्य का जीवन तभी सफल हो सकेगा जब वह अपने आत्मा का ज्ञान प्राप्त करे, आत्मानन्द प्राप्त करने का प्रयास करे और उसे प्राप्त कर ले।

किन्तु यह इतना आसन नहीं है। इसके लिए आवश्यक है आसनस्थ तन, आत्मस्थ मन, तभी होगा आश्वस्त जन। अर्थात् जब मनुष्य का शरीर एक आसन पर स्थिर रहने लायक बन जाए, मन अन्तर्मुख हो जाए तभी वह यह आशा करने की स्थिति में आता है कि वह उस मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा।

परमात्मा तक पहुँचने के लिए आवश्यक है श्रद्धा होना, उसका स्थिरीकरण होना और तीसरी बात है आत्मरमण याने आत्मा में रमण करने की आदत हो जाए तब मार्ग सुलभ हो जाता है।

अब प्रश्न है श्रद्धा करें तो किस पर करें? श्रद्धा को स्थिर करने हेतु आधार की आवश्यकता है। ये आधार तीन हैं—देव, गुरु और धर्म—अब यह जानना भी आवश्यक है कि हम देव किसे कहें? देव वह होगा जिसे असीमित ज्ञान हो, जिसके समस्त दोष अतीत में समाप्त हो गए हों याने जो वीतरागी हो तथा जिसके वचन ऐसे हों कि कोई किसी भी प्रकार से उसे असिद्ध न कर सके। जिसमें दिव्यगुण हों। जो न तो प्रसन्न हो, न रुष्ट हो उसे देव कहेंगे। ऐसे देव हम देख नहीं सकते परंतु उनकी सत्ता को अनुभव कर सकते हैं। हमें देव तक पहुँचने का मार्ग गुरु बताता है। गुरु, धर्म व देव के बीच की कड़ी है। गुरु ३ प्रकार के हैं—शिक्षा गुरु, दीक्षा गुरु व समर्थ गुरु। गुरु कभी भी अपने शिष्य को अपनी शरण में आने के लिए नहीं कहेगा। वह हमें रास्ता बताता है। देव व गुरु हमारे साधन हैं, जिनके माध्यम से हम आत्मा तक पहुँचते हैं। उसे पहचान सकते हैं। आत्मदर्शन होने पर देव भी पीछे रह जाते हैं व गुरु भी। जिस प्रकार समुद्र पार करने के लिए हमें किसी की व नाविक की आवश्यकता

होती है, पार लगने पर नहीं, उसी प्रकार आत्मा को पाने पर किसी साधन की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु अभ्यास करने लिए हमें साधनों की आवश्यकता होती है और वे देव, गुरु व धर्म हैं।

धर्म क्या है? धर्म किसी वस्तु का, पदार्थ का गुण है। अग्नि का गुण है उष्णता, पानी का गुण शीतलता है, उसी प्रकार धर्म आत्मा में है, आत्मा का धर्म है विवेक। ऐसा कोई प्राणी नहीं जो धर्मात्मा न हो। सभी प्राणियों में आत्मा है। अतः सभी में धर्म है, परन्तु वह उचित कामों में लगे, यह जरूरी है। धर्म का अर्थ है धारण करना। अपनी आत्मा को बुरे कामों से ऊपर उठाकर धारण करना धर्म है। अपने आत्मा के विवेक को जगाने का प्रयास हमें करना है।

हमारे पास मस्तिष्क है, जिसमें बुद्धि है, हृदय है जिसमें श्रद्धा का स्थान है व नाभि है जो संकल्प का स्थान है। इन तीनों के मिलने पर आत्म-जागरण होता है। अतः इन तीनों को मिलाने के लिए हमें ध्यान करना होगा, ध्यान करने के लिए बाहरी संसार को छोड़कर अन्तर्मुखी होना पड़ेगा। तभी तो हम तीनों को मिला पायेंगे और अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य आत्म-प्राप्ति को पा सकेंगे।

प्रातः ब्रह्मवेला में ४ बजे हमें उठना है। शारीरिक कार्यों से निवृत्त होकर आसन पर बैठना है। अपने देव व गुरु का स्मरण करना तथा उन्हें ३ बार प्रणाम करना है व प्रार्थना करना है। गुरु व देव का स्मरण इसलिए करना है कि हमारी श्रद्धा को स्थायित्व प्राप्त हो, क्योंकि ये उसके साधन हैं। फिर प्रणाम तीन बार इसलिए करना है कि उसमें तीन गुण हैं—ज्ञान, दर्शन व चारित्र्य। इन तीन रत्नों को प्रणाम करना है, उसके प्रति विनम्रता प्रकट करनी है। प्रणाम के बाद प्रार्थना करनी है। हमारी प्रार्थना में याचना नहीं होनी चाहिए, याचना रहित प्रार्थना करना है, जैसे—

हे प्रभु—

हमें प्रसिद्धि नहीं, सिद्धि चाहिए।

हमें अधिकार नहीं, सेवाभाव चाहिए।

हमें दया नहीं, प्रेम चाहिए।

हमें आश्रय नहीं, प्रेरणा चाहिए।

हमें दान नहीं, पुरुषार्थ चाहिए।

प्रार्थना करते समय हम पाँच मुद्राओं (प्रार्थनामुद्रा, योगमुद्रा, ज्योति या दीपमुद्रा, जिनमुद्रा व आनन्दमुद्रा) में से प्रार्थनामुद्रा बतायेंगे। जिसमें दोनों हाथों की हथेलियाँ नमस्कार की तरह चिपकी नहीं रहेंगी, थोड़ी पोखी रहेंगी। जिस प्रकार कमल पर सूर्य से सौरभ मिलता है उसी प्रकार ईश्वररूपी सूर्य से हमें सौरभ मिले, इस हेतु यह मुद्रा बनानी है।

प्रार्थना के बाद योगमुद्रा में बैठना है। योगमुद्रा याने तर्जनी व अंगूठा मिला हुआ तथा शेष तीनों अंगुलियाँ सीधी चिपकी हुई रखना है। इन तीन अंगुलियों के आशय हैं—

(१) रजोगुण, तमोगुण व सत्वगुण (२) आधि, व्याधि, उपाधि। (३) हेय, ज्ञेय व उपादेय (४) मन, काया, वचन।



अंगूठे से तात्पर्य है—(१) ब्रह्म (२) ईश्वर (३) परमात्मा । तर्जनी से आशय है—(१) मन (२) जीव (३) आत्मा । तो जब तक ३ अंगुलियों रूपी दुर्गुणों से मुक्ति न हो तब तक आत्मा का परमात्मा में, जीव का ईश्वर में, मन का ब्रह्म में लीन होना संभव नहीं । तीनों से मुक्ति पाने पर ही मन ईश्वर में या आत्मा परमात्मा में लग सकेगा ।

योगमुद्रा में बैठने पर दोनों हाथ घुटनों पर तने हुए रखना है । जिसे इड़ा व पिंगल नाड़ी पर तनाव आता है और श्वास सुषुम्नागामी बनता है और ध्यान लगाने में आसानी होती है ।

ध्यान लगने पर दीपमुद्रा या ज्योतिमुद्रा लगानी है । दोनों मध्यमा अंगुलियों को जोड़कर (चिपकाकर) सीधी खड़ी रखनी है एवं शेष सभी अंगुलियाँ अन्दर की ओर (मुट्टीनुमा) बन्द रखनी है । इसकी आकृति दीपक व बातिवाली की तरह होनी है । इसीसे इसे दीपमुद्रा कहते हैं ।

इसके बाद जिनमुद्रा का भी प्रयोग कर सकते हैं, जिनमुद्रा यानि दोनों हथेलियाँ एक दूसरे के ऊपर रखना । अंतिम मुद्रा है आनन्दमुद्रा ।

दिनांक २९-७-८४, रविवार

इस प्रकार प्रार्थना तथा योगमुद्रा में ध्यानस्थ बैठने पर हमारी बुद्धि, श्रद्धा व संकल्प का संयोग होगा व नाभि में ३½ चक्कर डाले हुए कुण्डलिनी सोई है उसका अन्दर के ३ चक्कर मुँह में है, वह खड़ा होगा व शेष तीन चक्कर अपने आप खुल जायेंगे । यहीं से आत्मदर्शन होते हैं ।

हमें ईश्वर के दर्शनमात्र से संतोष नहीं करना है, क्योंकि जब वे दर्शन देकर चले जायेंगे तो पुनः वियोग का दुःख होगा । अतः उन्हीं में विलीन होने की यह साधना है, प्रयास है । हम जब आत्मा में विलीन हो जायेंगे तो आनन्द ही आनन्द रहेगा जो कभी समाप्त नहीं होगा ।

ध्यान देने योग्य बातें

प्रातः उठने के समय, सोने से पहले, खाने के पहले, ध्यान के पहले मीन रखें व ईश्वर का स्मरण करें । हमेशा पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके बैठें । क्योंकि इन दिशाओं में शुक्लपक्षी जीवधारी रहते हैं । दक्षिण व पश्चिम में अधम प्रवृत्ति के जीव रहते हैं । अतः उधर हमारा मन स्थिर नहीं होगा । शुद्ध दिशा में शुद्ध वातावरण में मन अधिक तीव्रता से शुद्ध व स्थिर रहता है । जैसे एक गंदी बस्ती की भोपड़ी व एक साधु की कुटिया इन दोनों में से हमारा मन साधु की कुटिया में अधिक लगेगा । इसी प्रकार इन दिशाओं का है ।

दिनांक ५ अगस्त ८४, रविवार

योग १० प्रकार के हैं, उनमें से पहला है, 'खांतायोग' । प्रारम्भ प्रार्थना से ही करना है । इसके कुल ५ साधन हैं—(१) प्रार्थना (२) योगमुद्रा (३) ज्योतिमुद्रा (४) जिनमुद्रा (५) आनन्दमुद्रा । हमारा उद्देश्य यह अंतिम मुद्रा है । स्थिर आनन्द हमें प्राप्त करना है ।

प्रार्थना करते समय याचना नहीं करनी है। प्रार्थना शुद्ध स्वरूप याने ईश्वर की करना है। हमें यह अभ्यास होना चाहिए कि हम प्राणिमात्र में उसे देख सकें। इस अभ्यास के लिए पहले हमें अपने आत्मा के साथियों को मित्र बनाना होगा। ये हैं—कान, नाक, आँख, जिह्वा, शरीर व मन। यदि हम इन्हें मित्र न बनाएँ तो ये हमारे शत्रु बनकर हमारे मार्ग में रोड़े अटकाते हैं। इन्हें वश में करने पर मार्ग काफी सरल बन जाता है। आत्मा की ओर अन्तर्मुख होने में सहायता मिलती है। सच्चा मित्र वह है जो सुख में व दुःख में आगे आये। जैसे ढाल होती है, समरभूमि में वह आगे रहकर शरीर का रक्षण करती है व सिंहासन पर बैठने पर वह पीछे पीठ पर लगी रहती है। इसी प्रकार इन छह को हम मित्र बनाएँ तो हमारी उद्विग्न एवं कष्टकर स्थिति में आगे होकर हमारा साथ देंगे। वरना ये यदि शत्रु बने तो पहले ही हमारे मार्ग में बाधक बन जायेंगे। हमें इन पर विजय पानी है, इन्हें अपने नियन्त्रण में लेना है। यदि क्रोध आता है तो उसे कम करने का साधन है क्षमा करना। क्षमा भावना मन में रहे तो क्रोध नहीं आ पायेगा। इसी प्रकार अभिमान को दूर करने का अस्त्र है विनय। विनयशील व्यक्ति में कभी अभिमान नहीं होता और जब तक मनुष्य के मन में विनय न हो उसके मन में किसी संत, सज्जन या बड़ों के प्रति आदर उत्पन्न नहीं होगा। अतः अभिमान को दूर करने के लिए हमें विनयशील होना होगा। यदि हमारे मन में कपट, दंभ है, हम माया से घिरे हैं तो आत्मा को पहचान नहीं सकते, उसे देख नहीं सकते हैं। जिस प्रकार स्वच्छ आकाश में ही सूर्य चमकता है, यदि आकाश बादलों से घिरा हुआ है तो सूर्य की उपस्थिति होने के बावजूद हम उसके प्रकाश को देख नहीं सकते, उसी प्रकार जब तक मन स्वच्छ न हो हम आत्मा को देख नहीं सकते। अतः मन निर्मल हो, सत्यमार्गी हो यह आवश्यक है। इसके लिए हमें अपने आप को स्वार्थ से दूर रखना होगा, ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाना होगा, गुणपूजा का महत्त्व समझना होगा। यदि किसी की आत्मा की भावना को न समझकर उसका तिरस्कार करके आराध्य की पूजा करेंगे तो किसी काम की नहीं होगी।

प्रभु से इतना ही मांगना है कि वह आत्मिक बल इतना दे कि हम उस आनन्द में अमर हो जाएँ। हम ईश्वर का एक बार नाम न लें तो चल सकता है परन्तु उसके आदेशों का पालन करें तो उसको पूजने के बराबर ही है। परन्तु यदि उसका नाम रटते रहें और उसके बताये मार्ग के विरुद्ध चलें तो उसका नाम लेना न लेना बराबर ही है। क्या कोई पिता उसके पुत्र द्वारा अपनी आज्ञा की अवहेलना करके उसके मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होगा? जिस प्रकार वह पिता अपने ऐसे पुत्र से, जो उसकी आज्ञा का पालन नहीं करता व प्रशंसा करता है, प्रसन्न नहीं होगा तो ईश्वर कैसे प्रसन्न होगा?

हमारे लिए तो यही मार्ग है कि हम उसके बताये रास्ते पर उसके कहे अनुसार चलें और उसका स्मरण भी करते रहें, तब हम उस अंतिम उद्देश्य तक पहुँचने में सफल होंगे।

प्रिय पाठको! जिस प्रकार बुझाई करके खेत तैयार रखें तो वर्षा के होने पर बीज को अंकुरित होने में समय नहीं लगता, उसी प्रकार प. पू. म. सा. द्वारा प्रदत्त ये विचारसंकलन आपके जीवन की भूमि को तैयार रखने में यदि मदद करें और प. पू. म. सा. के आप

आसमस्थ तम
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जज

प्रत्यक्ष दर्शन का लाभ लें तो इस तैयार भूमि में आत्मदर्शन का बीज अंकुरित होने में विलम्ब नहीं होगा। यदि ऐसा हुआ तो और आनन्द की बात क्या हो सकती है? उपरोक्त संकलन में जो भी अनुचित लगे उसे छोड़ दें और मेरी मूर्खता के लिए मुझे क्षमा करें और जो भी सत्य लगे वह प. पू. म. सा. का है, ऐसा समझकर उसे आत्मसात करने का प्रयास कीजिए। जो भी सही है ही प. पू. म. सा. का है और उन्हीं के चरणों में अर्पण करती हूँ।

हरि ओ३म् योगकेन्द्र,
इन्दौर.

□□

अर्चनार्पण